रामेश्वर मिश्र पंकज

नदियां और हम

नदियां और हम

रामेश्वर मिश्र 'पंकज'

पर्यावरण कक्ष
गांधी शांति प्रतिष्ठान
नई दिल्ली

नदियां और हम। आलेख : रामेश्वर मिश्र 'पंकज'। आवरण चित्र : यमुना देवी। पहला संस्करण : 1989। दूसरा संस्करण : सितम्बर 1991। तीसरा संस्करण : मार्च 1994, मूल्य : पन्द्रह रुपये। प्रकाशक : मंत्री, गांधी शांति प्रतिष्ठान, 221, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-2 फोन : 3317491, 3317493 मुद्रक : अशोक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-6 फोन : 3264968

किसी समाज की विश्व-दृष्टि का एक लक्षण यह है कि वह अपने प्राकृतिक परिवेश को, उसके विभिन्न अवयवों को किस रूप में देखता-समझता है। यदि समाज और संस्कृति का अर्थ बोध और जीवन-व्यवहार है, तो मानना होगा कि विश्व-दृष्टि के मूलतः बदल जाने का अर्थ है राष्ट्रीय संस्कृति का बदल जाना, उसका रूपांतरण।

भारतीय समाज अपनी नदियों को कैसे देखता रहा है और अब कैसे देखता है, इसका स्मरण इसी दृष्टि से सार्थक है।

पवित्र प्रवाह हैं नदियां

सबसे पहले स्वयं बोध की ही बात लें। दुनियां की अलग-अलग संस्कृतियों में बोध का स्रोत अलग-अलग माना जाता है। कहीं कोई विशेष देवदूत, पैगंबर, मसीहा, कहीं ऐतिहासिक-शक्तियां, उत्पादन का ढांचा, औद्योगिक विकास की दशा विशेष इत्यादि। प्राचीन काल में भारतीयों की मान्यता यह थी कि संपूर्ण सृष्टि में एक ही अखंड सत्ता सर्वत्र है। किंतु प्रत्येक प्राणी को इस अखंड बोध का अस्फुट आभास मात्र रहता है क्योंकि सामान्यतः प्राणी अपनी ही लालसाओं-योजनाओं की तात्कालिक पूर्ति में व्यस्त रहते हैं। स्फुट यानी स्पष्ट बोध तो साधना से संभव होता है। यह साधना हर व्यक्ति कर सकता है। इस साधना के संकेत ही दिए जा सकते हैं, वास्तविक बोध तो स्वतः पाना होता है। इसी संकेत के संदर्भ में यह कहा गया कि "बोध की प्राप्ति हमारे पूर्वजों को पर्वतों की घाटियों और नदियों के संगम पर हुई"—"उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम्। धियो विप्रो अजायत्। (ऋग्वेद 8/6/28)। इस संकेत में यह निहित है कि जो भी

व्यक्ति गिरि-आश्रय में या नदी के संगम में ध्यान, मनन और अवधारण करेगा, उसे बोध की, पवित्र धी (बुद्धि) की प्राप्ति होगी।

इस तरह भारतीय विश्व-दृष्टि में नदियों के प्रति एक विशेष श्रद्धा-भाव है। वे पवित्र प्रवाह के रूप में देखी जाती रही हैं। विभिन्न काल-खंडों में इस पवित्र-भावदृष्टि की अलग-अलग तरह से अभिव्यक्ति हुई है। वैदिक और प्राग्वैदिक काल में भाषा की मूल दृष्टि ही भिन्न थी। वहां प्रत्येक शब्द, प्रत्येक पद, चेतना के रूप-विशेष के संकेत के लिए प्रयुक्त होता है। इसीलिए वैदिक साहित्य में नदियों का वर्णन मुख्यतः आध्यात्मिक निरूपण के लिए है। वैदिक दृष्टि इस संसार को एक सतत अभिनव सृजन मानती है। इस निरंतर सृष्टि-प्रक्रिया को ब्रह्म-यज्ञ कहा गया। इस सृष्टि के विश्लेषण में नदियों और समुद्र का उदाहरण लिया गया है। एक विराट चेतना-समुद्र है यह सृष्टि। नदियां इस चेतना की ही विविध प्रणालियों जैसी हैं। अतः वे ब्रह्मद्रव हैं। गंगा को विशेष महत्व देने के कारण उसे तो बारंबार ब्रह्मद्रव कहा ही गया है, अन्य नदियों को भी ब्रह्मद्रव कहा गया है।

वैदिक साहित्य में सरस्वती का विशेष महत्व है। वहां सरस्वती एक चेतना-सरित है, जो पवित्र करती है, शक्ति देती है, समृद्धि देती है, चेतना को उद्दीप्त करती है, निरंतर प्रेरणा देती है। वह एक दिव्य केतु (झंडा) है, जो सतत फहराती है। इस तरह वैदिक साहित्य में नदियां एक विराट चेतन-तत्व के वर्णन-विश्लेषण के माध्यम के रूप में काम आती हैं। वहां नदी की स्तुति तो नहीं है, परंतु नदी एक माध्यम है, संकेत है ब्रह्म-निरूपण का।

वेदों में सात नदियों का विशेष वर्णन है। ये सात चेतना-प्रवाह-रूप हैं। उन्हें ही उषा की गौएं, सूर्य के सात घोड़े तथा सात अग्नि-रूप कहा है। इस वर्णन में नदियां वर्ण्य नहीं हैं, पर वे वर्णन का माध्यम तो हैं ही और उस वर्णन में निहित सौंदर्य-दृष्टि की पवित्रता नितांत स्पष्ट है। वैदिक साहित्य में सौंदर्य की धारणा

जल मात्र को पवित्र माना गया है। स्वाभाविक जल विशेषतः पवित्र है। स्वाभाविक जल का अर्थ है नदियां, मंदिरों से जुड़ी वापियां, झीलें, गहरे कुंड और पर्वतीय प्रपात।

ही बौद्धिक और धर्ममय है। इसलिए नदियों का सौंदर्य भी बौद्धिक प्रकाश और धर्म-बोध का अंग है। (प्रसंगवश यहां यह भी स्मरण कर लें कि बौद्धिक से भिन्न किसी आध्यात्मिक तत्व को भारतीय दृष्टि अमान्य करती है।) तब भी जिन नदियों का वर्णन है, उनकी सूचना का भी अपना महत्व है।

ऋग्वेद में गंगा, यमुना, सरस्वती, सिंधु और पंजाब की अन्य नदियों तथा सरयू एवं गोमती नदी का वर्णन है। सात-सात नदियों के तीन दल ऋग्वेद में विशेष श्रद्धा से वर्णित हैं। कुल 99 नदियों का वहां उल्लेख है। तीन दलों की तीन प्रमुख नदियां हैं—सिंधु, सरस्वती और सरयू। गंगा इन तीनों से भी विशिष्ट है, अतः ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदी सूक्त में सर्वप्रथम चेतना-गंगा की प्रार्थना है। ऋग्वेद में जल और नदियों के प्रति श्रद्धापूर्ण संकेत हैं। उन्हें वैदिक शक्ति की अभिव्यक्ति एवं पूजा योग्य माना गया है। जल पवित्र करने वाला मान्य है। अथर्ववेद में भी यही कहा है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार सभी देवता जलों के मध्य केंद्रित हैं।

जल सहज पवित्र है

नदी संबंधी विचारों के मूल में जल संबंधी दृष्टि है। अतः जल के बारे में भारतीयों के जो विचार रहे हैं उनका ध्यान आवश्यक है। जल मात्र को पवित्र माना गया है। स्वाभाविक जल विशेषतः पवित्र है। स्वाभाविक जल का अर्थ है नदियां, मंदिरों से जुड़ी वापियां, झीलें, गहरे कुंड और पर्वतीय प्रपात। मनुस्मृति में नदी की परिभाषा दी है कि जो कम-से-कम आठ हजार धनुष की लंबाई वाली हो यानी कम-से-कम लगभग पन्द्रह किलोमीटर लंबी हो, वह है नदी। जो इससे छोटे नाले आदि हैं वे गर्त कहलाते हैं। स्मृतियों में यह भी कहा है कि श्रावण-

जिसकी हर नदी के प्रति पवित्र भावना नहीं, उसकी गंगा के प्रति वास्तविक पवित्र भावना संभव नहीं।

भादों में नदियां रजस्वला होती हैं। अतः इन दिनों उनमें स्नान वर्जित है। जो नदियां समुद्र में मिलती हैं, उनमें ही इन दिनों स्नान किया जा सकता है। मनु-स्मृति में तो यह भी कहा है कि शरीर को जल (नदी, झील, कुंड आदि) के भीतर नहीं रगड़ना चाहिए। किनारे पर आकर शरीर रगड़ें या मैल छुड़ा लें। जल को पैरों से पीटना भी वर्जित है। श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके जल में प्रविष्ट हों। शौच, मूत्र-त्याग, बासी फूल चढ़ाना या डालना, निर्वसन नहाना या किसी तरह की अश्लील चेष्टा तो नदी में नितांत निषिद्ध ही है।

हर नदी गंगा है

गंगा, यमुना, सरस्वती, सिंधु, नर्मदा, कृष्णा, गोदावरी और कावेरी तो परम पवित्र हैं ही और उनकी पवित्रता पर बहुत लिखा—कहा गया है। किंतु साथ ही, भारतीय दृष्टि में यह भी बराबर स्पष्ट रहा है कि हमारी दृष्टि, बोध, भावना और कर्म ही इस पवित्रता को बनाये रख सकते हैं। फलतः यह बोध भी सदा जागृत रहा है कि हर नदी अपने-अपने क्षेत्र के लिए गंगा ही है। जैसे कि हर मां अपनी-अपनी संतानों के लिए परम पवित्र है, जैसे कि हर कुलपति अपने-अपने कुल के लिए, हर ग्राम-प्रधान अपने-अपने गांव के लिए, प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति के समान आदरणीय है, जैसे कि हर पंच (आज का सरकारी पंच नहीं, समाज का परंपरागत सहज पंच) अपने विचाराधीन विषय के लिए सर्वोच्च न्यायाधीश माना जाता रहा है, उसी तरह हर नदी गंगा है। जैसे हर स्त्री जगज्जननी का अंश है, हर कुमारी कन्या त्रिपुरबाला दुर्गा का अंश है उसी तरह प्रत्येक नदी गंगा है। जिसकी हर नदी के प्रति पवित्र भावना नहीं, उसकी गंगा के प्रति वास्तविक पवित्र भावना संभव नहीं।

नदियों-वनों आदि को पवित्र मानने वाली भारतीय दृष्टि की अंतर्निहित राजनैतिक दृष्टि है हर नदी को गंगा मानना, मन चंगा तो कठौती में गंगा मानना, नदियों-वनों को संपूर्ण राष्ट्र यानी समाज की सम्पत्ति मानना। उन्हें राज्य के नाम पर राज्यकर्ताओं के स्वेच्छाचारी प्रबंध के अधीन वस्तु नहीं मानना।

गौतम, बौधायन एवं वसिष्ठ धर्मसूत्र में सात तरह के स्थान पुनीत और पाप-नाशक बनाये गये हैं। ये हैं—पर्वत, पवित्र नदियां, सरोवर, तीर्थ-स्थल, ऋषि-निवास, गौशाला एवं देव-मंदिर। पद्मपुराण के भूमिखंड का कथन है कि समस्त नदियां पुनीत हैं, चाहे वे ग्रामों से होकर जाती हों, चाहे वनों से। नदियों के तट तीर्थ हैं। जहां उस तट का कोई विशेष तीर्थनाम नहीं भी हो, वहां उसे विष्णुतीर्थ मानना चाहिए।

राजनैतिक दृष्टि

नदियों के प्रति दृष्टि को जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि के अंग के रूप में ही समझा जा सकता है। पर्वतों और वनों के प्रति पवित्र दृष्टि, नदियों के प्रति पवित्र दृष्टि की अनिवार्य सहवर्ती है। फिर, एक विशेष बात यह है कि ये पवित्र स्थल किसी की संपत्ति नहीं होते। सामाजिक सहमति और व्यवस्था से उनका उचित उपयोग समाज के सभी वर्गों और कुलों के लोग भिन्न-भिन्न रूप में कर सकते हैं। उसमें व्यवस्थात्मक अधिकार का कुछ विभाजन संभव है। किन्तु यह नदी या वन पर अधिकार का पर्याय नहीं है। अतः जिस दिन से ब्रिटिश शासन ने राज्य को देश की समस्त भूमि, जल, वन और खनिज-स्रोतों का स्वामी घोषित किया, उसी समय से भारतीय पवित्र दृष्टि बाधित मानी जाएगी। जब तक नदियों-वनों को राज्य की संपत्ति माना जाएगा, राष्ट्र यानी संपूर्ण समाज की नहीं, तब तक वास्तविक पवित्र-दृष्टि की प्रतिष्ठा असंभव है।

प्रत्येक विश्व-दृष्टि का एक अनिवार्य अंग होती है, उसमें निहित राजनैतिक दृष्टि। अतः नदियों-वनों आदि को पवित्र मानने वाली भारतीय दृष्टि की अंतर्निहित राजनैतिक दृष्टि है हर नदी को गंगा मानना, मन चंगा तो कठौती में

गंगा मानना, नदियों-वनों को संपूर्ण राष्ट्र यानी समाज की संपत्ति मानना। उन्हें राज्य के नाम पर राज्यकर्ताओं के स्वेच्छाचारी प्रबंध के अधीन वस्तु नहीं मानना। ब्रिटिश काल से यह राजनैतिक दृष्टि खंडित हुई और आज भी वह अप्रतिष्ठित ही है। इस राजनैतिक दृष्टि के प्रतिष्ठित रहते ही फिर गंगा, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, यमुना, कृष्णा, सरस्वती आदि को विशिष्ट महत्व देने की कोई सार्थकता बनती है। इसी पवित्र राजनैतिक दृष्टि के रहते ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि तीर्थ चार प्रकार के हैं—मानुष तीर्थ यानी राजाओं द्वारा समाज की सेवा में बनाये गये तीर्थ, उनसे उत्तम हैं आर्ष तीर्थ जो ऋषियों ने संस्थापित किए, उनमें भी उत्तम हैं आसुर तीर्थ, जो विशिष्ट प्राणशक्ति संपन्न लोगों से संबंधित हैं, सबसे उत्तम हैं देवतीर्थ, जो स्वाभाविक हैं, मनुष्य द्वारा संस्थापित नहीं। इन देवतीर्थों में सर्वाधिक पुनीत हैं 12 नदियां। जिनमें से छः विंध्य के दक्षिण में हैं—गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी और पयोष्णी तथा ये छः विंध्य के उत्तर में हैं—गंगा, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका एवं वितस्ता।

भारतीय दृष्टि के किसी एक छोटे से अंश को लेकर शेष सबका परित्याग कर देने वाली बुद्धि के प्रयोजन कुछ और होंगे, भारतीयता को समझना उसका उद्देश्य नहीं हो सकता। गंगा या किसी अन्य एक नदी को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानने की बात का कोई मतलब तभी निकलता है, जब शेष सब नदियां भी महत्वपूर्ण मानी जाएं। किसी भी भारतीय ग्रंथ में या लोककथा में किसी एक भारतीय नदी को एकमात्र पवित्र नदी नहीं कहा गया है। सर्वाधिक का कभी भी अर्थ एकमात्र नहीं होता। वह तो एक तुलनात्मक पद है।

करोड़ों तीर्थ

जिस तरह अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग देव-शक्तियां सर्वाधिक महत्व-पूर्ण होती हैं, उसी तरह अलग-अलग नदी शक्तियां भी। फलतः भिन्न-भिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न नदियों की महत्ता विवेचित है। यह भी निर्विवाद है कि गंगा को अत्यधिक महिमामयी माना जाता रहा है। स्वयं आदिकवि वाल्मीकि ने, आद्य शंकराचार्य ने तथा हजारों भारतीय कवियों ने यह कहकर अपना गंगाप्रेम दिखाया है कि गंगा के तट पर पक्षी, मृग या गंगाजल की मछली बनकर भी वे अपने जीवन को धन्य मानेंगे। स्पष्टतः यह एक सांस्कृतिक-राजनैतिक दृष्टि की अभिव्यक्ति है। इसी से इन्हीं महान कवियों ने यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि की भी गंगा जैसी ही स्तुति की है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने कहा है—"स्रोतसामस्मि जाह्नवी' यानी स्रोतों में मैं गंगा हूं। इसका एक निहितार्थ यह भी है कि प्रत्येक स्वाभाविक स्रोत में गंगा का अंश अंतःप्रवाहित है। ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं। उसी तरह आध्यात्मिक गंगा प्रत्येक स्रोत में अंतःस्थ है। बौद्ध एवं जैन शास्त्रों में भी गंगा समेत विविध नदियों का महत्व मान्य है।

ऋग्वेद, महाभारत के वनपर्व और अनुशासनपर्व, पद्मपुराण, विष्णु, कूर्म, वराह, ब्रह्म, ब्रह्मानंद, भविष्य, गरुड़, नारदीय, स्कंदादि पुराणों में गंगा की महिमा का गान है। इसी तरह शतपथ ब्राह्मण, वनपर्व (महाभारत) तथा मत्स्य कूर्म, पद्म, अग्नि, नारदीय वायु स्कंध आदि पुराणों में नर्मदा की स्तुति है। मत्स्य और पद्म के अनुसार अमरकंटक से नर्मदा सागर तक 10 करोड़ तीर्थ हैं। अग्निपुराण के अनुसार ये तीर्थ 60 करोड़ हैं। नारदीयपुराण के अनुसार साढ़े तीन करोड़ हैं, जिनमें 400 मुख्य हैं। नर्मदा को दर्शन मात्र से पवित्र करने वाली अतः सर्वाधिक

पवित्र क्षण कहा गया है। मत्स्य एवं कूर्म पुराण में इसकी लंबाई 100 योजन यानी लगभग 800 मील कही गयी है, जोकि लगभग तेरह सौ किलो मीटर होती है और यह बिल्कुल ठीक वर्णन है। स्कंद पुराण में एक पूरा खंड ही रेवाखंड नाम से है। गोदावरी का भी वर्णन रामायण, महाभारत एवं पुराणों में वैसे ही आदर के साथ है। ब्रह्मपुराण के अनुसार विंध्य के दक्षिण में जो गंगा है, उसे गोमती यानी गोदावरी कहा जाता है और विंध्य के उत्तर में उसे भागीरथी कहते हैं। अनेक पुराणों में मत्स्य, वायु मार्कण्डेय, ब्रह्म एवं ब्रह्मांड पुराण में गोदावरी के तटवर्ती प्रदेश को तीनों लोकों में सबसे सुंदर कहा गया है। पुराणों के अनुसार गौतम ऋषि ने शिव भगवान की जटा से गंगा को ब्रह्मगिरि पर उतारा। गणेश जी ने इसमें गौतम की सहायता की। यही गंगा गौतमी या गोदावरी के नाम से प्रख्यात है। ब्रह्मपुराण के अनुसार गोदावरी तट पर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। जब बृहस्पति सिंहस्थ होता है, उस समय का गोदावरी-स्नान महापुण्यकारक है। इस समय का केवल एक बार का गोदावरी - स्नान उतना पुण्यफल देता है जितना कि गंगा जी (भागीरथी) में प्रतिदिन नहाते रहने पर आठ हजार वर्षों के स्नान से पुण्य मिलता है।

मानस और भौम तीर्थ

नदियां तीर्थ हैं। इनके तट पर विशिष्ट तीर्थ भी हैं। स्कंदपुराण के काशीखंड के अनुसार तीर्थ दो प्रकार के हैं : मानस तीर्थ और भौम तीर्थ। मानस तीर्थ कहते हैं उन तपस्वी, ज्ञानी जनों को, जिनके मन शुद्ध हैं और आचरण ऊंचा है, जो समाज की भलाई के लिए ही काम करते हैं। भौम तीर्थ चार तरह के होते हैं : अर्थ तीर्थ, काम तीर्थ, धर्म तीर्थ और मुक्ति तीर्थ।

नदियों के तट और संगम पर बने बड़े व्यापारिक केंद्र 'अर्थ तीर्थ' कहे जाते हैं। कलाओं और सौंदर्य के साधना केंद्रों को 'काम तीर्थ' कहते हैं। जहां विद्या और धर्म के केंद्र हों, वे 'धर्म तीर्थ' होते हैं। जहां मुख्यतः पराविद्या एवं साधना के, मोक्ष-साधना के केंद्र हों, वे मोक्ष तीर्थ होते हैं। जहां चारों का संगम हो वह है महापुरी। भारतीय राजधानी को अर्थ काम एवं धर्म तीर्थ बनना चाहिए। तभी वह सच्चे अर्थों में भारतीय राष्ट्र की राजधानी होगी।

सभी नदियों के तट पर अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष तीर्थ रहे हैं। हरिद्वार, प्रयाग, बनारस, उज्जैन, नासिक जैसे तीर्थ महापुरियां रहे हैं। इसी तरह समुद्र-तटवर्ती जगन्नाथपुरी, द्वारिका, रामेश्वरम् आदि भी हैं। प्रयाग, काशी और गया को त्रिस्थली कहा गया है। प्रथम दो गंगा-तट और अंतिम फल्गु नदी के तट पर हैं। यदि सिर्फ प्रख्यात धर्मशास्त्रों तक ही दृष्टि रखें तब भी भारत के प्रायः हर क्षेत्र की मुख्य नदियां तीर्थमय हैं। काबुल और कश्मीर की सुवास्तु, गौरी, कुहू, कुभा (काबुल नदी), क्रमु (कुर्रम), वर्णु नदियां तथा कश्मीर-पंजाब की सिंधु, असिक्नी (चिनाव), परुष्णी (रावी), विपाशा (व्यास), अश्मन्वती, शतद्रु या शुतुद्रि (सतलुज), दृषद्वती, वितस्ता (झेलम) नदियां तो वैदिक साहित्य में गरिमा-मंडित हैं ही, बाद के धर्मशास्त्रों में भी सुपूजित हैं। धर्मशास्त्रों, पुराणों में बाद में चिनाव का चन्द्रभागा और रावी को इरावती कहा है। इसके साथ ही अचला, देविका, आपगा, कनकवाहिनी, कालोदका, मधुमती, विशोका आदि पवित्र नदियां और अक्षवाल, अच्छोदक, चन्द्रपुर, अनंतह्रद, गोपाद्रि, जयवन, जयपुर (अंदरकोट), ज्येष्ठेश्वर, तक्षकनाग, नंदिकुंड, नंदिक्षेत्र, नन्दीश, मार्तण्ड, नरसिंहाश्रम, नीलनाग, वितस्तात्र आदि पवित्र जलस्रोत और उनसे जुड़े तीर्थ धर्मशास्त्रों में वर्णित हैं। यों तो सम्पूर्ण कश्मीर ही उमा का देश कहा गया है और स्वर्गिक वितस्ता उनका सीमंत (सिर की मांग) है। प्रसंगवश यह भी स्मरणीय है कि कश्मीर के बारहवीं

इन नदियों और स्थलों को स्वच्छ, सुंदर और जीवंत रखने को उनके तट के वासी, देशवासी सदा सजग-सक्रिय रहते थे। लेकिन जब स्वयं लोगों का ही जीवन आक्रमणों और पराजयों से जर्जर-विखंडित और करुण हो जाए, तब उनसे नदी की रक्षा की अपेक्षा तो क्रूरता ही होगी। तब भी इस दौर में भी वे जितना करते रहते हैं, वह आश्चर्यप्रद ही है।

शताब्दी के महान कवि कल्हण ने अपनी अमर कृति राजतरंगिणी की तुलना दक्षिण भारतीय पवित्र सरिता गोदावरी की तीव्र धारा से की है।

ब्रह्मपुत्र, गंगा और यमुना के क्षेत्र की तो बात ही क्या की जाये। यहां की लगभग प्रत्येक छोटी-बड़ी नदी और हजारों पवित्र स्थलों का पुराणों-धर्मशास्त्रों में गौरवगान है। स्पष्ट है कि इन नदियों और स्थलों को स्वच्छ, सुंदर और जीवंत रखने को उनके तट के वासी, देशवासी सदा सजग-सक्रिय रहते थे। लेकिन जब स्वयं लोगों का ही जीवन आक्रमणों और पराजयों से जर्जर-विखंडित और करुण हो जाए, तब उनसे नदी की रक्षा की अपेक्षा तो क्रूरता ही होगी। तब भी इस दौर में भी वे जितना करते रहे हैं, वह आश्चर्यप्रद ही है।

गंगा और यमुना तथा लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के प्रति पुराणों एवं महाभारत में गहरा श्रद्धा-भाव है। महान कवियों ने इनकी महिमा कही है। गंगा-यमुना के संगम का वेद-पुराण, ब्राह्मण-ग्रंथ, रामायण, महाभारत और समस्त धर्मशास्त्रों में बखान है। गंगा और यमुना की सभी प्रमुख सहायक, उपसहायक नदियों—सरयू यानी घाघरा, गोमती, सदानीरा इक्षुमती, कोसी, गंडकी, चर्मण्वती (चम्बल), काली सिंधु, महान शोणभद्र, तमसा, वेत्रवती (बेतवा), दशार्णा (बेतवा की सहायक धसान नदी) आदि की पवित्रता का जो गहरा बोध इस क्षेत्र के लोगों में रहा है, वही धर्मशास्त्रों में प्रतिसंवेदित है। असम, उत्तराखंड, हरियाणा, उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, एवं पश्चिम बंगाल का क्षेत्र इस ब्रह्मपुत्र-गंगा-यमुना क्षेत्र में आता है। इसके साथ ही राजस्थान की पर्णाशा (बनास), विंध्य क्षेत्र की पार्वती, सुरसा, माही, बिहार की पुनपुन, फल्गु, कनकन्दा, उड़ीसा की सुवर्ण रेखा जैसी नदियां भी धर्मशास्त्रों में परम पवित्र कही गयी हैं। सरयू नदी का तो इतना महत्व रहा है कि उसके जल को एक विशेष नाम ही दिया गया—'सारव'। सरयू तट पर अनेक बौद्ध तीर्थ भी हैं। गंडकी के उद्गमस्थल शालिग्राम की महत्ता भी सुविदित

है। यहां के शालिग्राम पत्थर, विष्णु की मूर्ति कहे गये हैं।

मानसरोवर, गंगोत्री, यमनोत्री, बदरिकाश्रम, ब्रह्मकपाल, केदारधाम, देवप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग, विष्णुप्रयाग, ऋषिकेश, हरिद्वार, साकेत (अयोध्या), कुरुक्षेत्र, श्रृंगवेरपुर, मथुरा-वृन्दावन-राजापुर, सूकरतीर्थ, नैमिष, प्रयाग, काशी आदि धर्मतीर्थ एवं मोक्षतीर्थ तथा देहरादून, प्रागज्योतिषपुर, पानीपत, इन्द्रप्रस्थ, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद (प्रयाग), पाटलिपुत्र एवं बनारस (काशी), हस्तिनापुर आदि कामतीर्थ एवं अर्थतीर्थ इन नदियों के तट पर हैं। अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष की सतत साधना देशवासी इन क्षेत्रों में करते रहे हैं।

नदियां मां हैं

प्रत्येक परम्परानिष्ठ भारतीय अपनी नदियों को मां ही मानता रहा है, और मानता है। गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्र-सिंधु और सप्तसिंधु, कश्मीर आदि की तरह विंध्य, विदर्भ, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र, तमिलनाडु आदि सभी क्षेत्रों में नदियों के प्रति यही भाव है। गोदावरी और नर्मदा का माहात्म्य गंगा की ही तरह है। विदिशा, पूर्णा, तापी या ताप्ती, पयस्विनी, मन्दाकिनी, चित्रकूटा, श्रृंपा, निर्विन्ध्या जैसी मध्य भारत-विन्ध्य-विदर्भ की नदियां सपूजित हैं। अमरकंटक, त्रिपुरी, माहिष्मती, ओंकार-मान्धाता, अंकलेश्वर, भृगुतीर्थ, जामदग्न्य तीर्थ, कबीरवड़, भृगुकच्छ या भरुकच्छ जैसे तीर्थ और मंडला, होशंगाबाद जैसे शहर नर्मदा तट पर हैं। क्षिप्रा तट पर महाकाल की नगरी उज्जयिनी है। उत्तरापथ और दक्षिणापथ की सीमारेखा है भगवती नर्मदा। इसीलिए इस पवित्र कुमारी की परिक्रमा या परिकम्मा का बहुत महत्व शास्त्रों में विस्तार से प्रतिपादित है। विभिन्न शिलालेखों में भी नर्मदा का सादर उल्लेख है। मन्दाकिनी के तट पर परम पवित्र

चित्रकूट धाम है। चित्रकूट और मन्दाकिनी दोनों ऋक्षपर्वत से भी निकली हैं। विन्ध्य से निकली महानदी का एक नाम चित्रोपला या चित्रोत्पला भी है। जैन-गंगा (वेणा) का भी महत्व ब्रह्मांड, मत्स्य आदि पुराणों में वर्णित है।

गंगा-गोदावरी की तरह ही कृष्णा, कृष्ण-वेणा, वेण्या, तुंगा, तुंगभद्रा, ताम्र-पर्णी, फेना, पम्मा, प्रवरा, पापघ्नी, चित्रावती और कावेरी भी परम पवित्र, शास्त्र-सुपूजित हैं। सह्याद्रि पर्वत से निकली हुई ये पांच नदियां पंचगंगा कही गयी हैं—कृष्णा, वेणी, कुकुदमती (कोयना), सावित्री और गायत्री। कृष्णा महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र की नदी है। महाबलेश्वर, श्रीपर्वत, वाई, विजयवाड़ा, सांगली, सतारा (माहुली) जैसे प्रसिद्ध स्थल कृष्णातट पर हैं। पवित्र भीमा नदी (भीमरथी) की पुराणों में प्रचुर प्रशस्ति है। इसके निकास-स्थल पर भीमशंकर हैं, जो बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक हैं। पवित्र पंढरपुर इसी भीमरथी के तट पर है। गुजरात की साभ्रमती (साबरमती) नदी की भी पुराणों में महिमा गायी गयी है। पद्मपुराण के अनुसार इसकी सात धाराएं हैं—साभ्रमती, सेटीका, बकुला, हिरण्मयी, हस्ति-मती (हाथीमती), वेत्रवती (वात्रक) एवं भद्रमुखी। इस पुराण के चालीस अध्यायों में साभ्रमती के उपतीर्थों का विस्तार से वर्णन है। प्रत्येक महत्वपूर्ण नदी की तरह हजारों ऋषि-मुनि यहां भी तपस्या कर चुके हैं। आधुनिक काल में महात्मा गांधी की भी यह तपस्थली रही है। अग्नितीर्थ, कर्दनाल, कापोतक तीर्थ, काश्यप तीर्थ, धवलेश्वर, निम्बार्क तीर्थ, चन्द्रेश्वर, आदित्य तीर्थ, पालेश्वर, ब्रह्मवल्ली तीर्थ, रुद्रमहालय तीर्थ आदि साभ्रमती के तटवर्ती प्रमुख तीर्थ हैं। पवित्र ज्योतिर्लिंग प्रभास तीर्थ उस स्थल पर है जहां सरस्वती समुद्र में मिली। द्वारकापुरी गोमती के तट पर और समुद्रतटवर्ती है। पहले वह कुशस्थली नाम से विख्यात थी। उत्तराध्ययन सूत्र आदि जैन ग्रंथों में तथा बौद्ध जातकों में भी द्वारका एवं रैवतक (गिरनार) का उल्लेख है।

महानदी, सुवर्णरेखा, वैतरणी, कपिशा और विरजा उड़ीसा की प्रसिद्ध नदियां हैं। वैतरणी तट पर विरज तीर्थ है। नदियों की ही तरह समुद्र भी हमारे यहां पूज्य-पवित्र रहा है। पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथधाम, द्वारकाधाम एवं रामेश्वरधाम प्रख्यात हैं। पुरुषोत्तम तीर्थ जगन्नाथ को धर्मशास्त्रों में महान मोक्ष-तीर्थ कहा है। यहां का महाप्रसाद अत्यंत पवित्र माना जाता है।

पवित्र गोदावरी या गोमती के तट पर पंचवटी, नासिक, जनस्थान, प्रवरा-संगम, वंजरा-संगम, गोवर्धनतीर्थ, आत्मतीर्थ, आत्रेयतीर्थ, आपस्तम्बतीर्थ, इंद्र-तीर्थ, इलातीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, कपिलतीर्थ, कोटितीर्थ, गोविंदतीर्थ, चक्षुस्तीर्थ, छिन्नपापक्षेत्र, नन्दीतट, नागतीर्थ, नीलगंगा, पुरुरवस्तीर्थ, प्रतिष्ठान या पैठन, पैशाचतीर्थ, पौलस्त्यतीर्थ, फेना-संगम, बार्हस्पत्यतीर्थ, मन्युतीर्थ, मातृतीर्थ, यमतीर्थ, श्वेततीर्थ, सिद्धतीर्थ आदि हैं। गोदावरी जहां समुद्र में सात मुखों से मिलती है, वहां सप्तगोदावर क्षेत्र हैं। ये सातों प्रवाह सात ऋषियों के नाम पर प्रसिद्ध हैं।

इसी तरह जहां से गोदावरी निकलती है, वहां पवित्र त्र्यम्बकेश्वर धाम है। भद्राचलम और राजमहेंद्री भी गोदावरी तट पर ही हैं। कावेरी भी महाभारत एवं पुराणों में सादर वर्णित है। इसे भी गोदावरी की तरह दक्षिणी-गंगा कहा गया है।

तुंगा और भद्रा कूडली के पास मिलकर तुंगभद्रा होती है। तुंगा के तट पर प्रसिद्ध श्रृंगेरिमठ है। महान विजयनगर राज्य चौदहवीं शताब्दी ईस्वी में तुंगभद्रा के ही तट पर उभरा-फैला और सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्द्ध तक कायम रहा। तुंगभद्रा तट पर ही पुराण-प्रशंसित पवित्र हरिहर क्षेत्र है। अलमपुर (रायचूर जिला) में तुंगभद्रा कृष्णा से मिलती है। एक अन्य पुराण-पूजित नदी वेगवती है, जिसके दक्षिणी तट पर मदुरा स्थित है। मदुरा पाण्ड्यों की राजधानी रही है। यह विद्या, कला और धर्म का एक महान केंद्र थी। यानी अर्थतीर्थ, कामतीर्थ और

धर्मतीर्थ तीनों थी। इसी तरह महान पल्लव राज्य भी पेन्नार नदी के तट पर फैला था जो उत्तर में उड़ीसा तक विस्तृत था। प्रसिद्ध कांची तीर्थ पल्लवों की राजधानी था। इतिहास साक्षी है कि इन सभी तीर्थों को, पवित्र नदियों को सदा स्वच्छ, सुदर, प्रवहमान, प्राणवान एवं धर्ममय रखा जाता रहा है। नदी-तटों पर युद्ध भी हुए, लाशें भी बहीं, पर उस पवित्र जीवन-दृष्टि द्वारा संरक्षित-पोषित प्रवाह में वे आकस्मिक अपशेष जलचर-जीवों का आहार बन जाते थे और प्रवाह अबाधित रहता था।

यहां इन सब बातों के उल्लेख का उद्देश्य किसी चमत्कार की चर्चा या कुतूहल में वृद्धि करना नहीं है। अपितु यह याद करना है कि इन सब बातों से लोग अठारहवीं शती तक सुपरिचित थे। यानी वे जानते-समझतेथे कि (1) हर नदी गंगा है। (2) गंगा नदी में किसी पुण्यपर्व में जा सकें तो अति उत्तम। (3) नर्मदा, गोदावरी समेत आठों-नवों पवित्र नदियों में स्नान भी उतना ही उत्तम है। (4) न पहुंच पाने पर पुण्यपर्व में पास की अपनी गंगा में स्नान भी समान फलप्रद है। (5) स्नान करते समय गंगा मैया का नाम ले लेने से गंगा वहां चली आएंगी (यह भी पुराणों में स्पष्टतः कथित है)। लेकिन (6) बिना मन की शुद्धि के समस्त स्नान-ध्यान निष्फल हैं (ये भी अत्यंत स्पष्ट शास्त्र-वचन है)।

पवित्रता : एक सामाजिक आदर्श

अतः जो लोग इस भ्रम में पड़कर दुःखी रहते हैं कि किसी पुण्य पर्व में पवित्र स्नान मात्र को कोई परम्परानिष्ठ हिन्दू सचमुच मुक्ति का अंतिम आश्वासन मानता है, वे भारतीयता से अपरिचित ऐसे लोग हैं, जिन्हें या तो अज्ञानी कहा

नदियों और तीर्थों की पवित्रता सामाजिक पवित्रता का अंग है। उसके पीछे कोई भौतिक रहस्य नहीं है।

जा सकता है या फिर फासिस्ट, क्योंकि वे जानबूझकर दूसरों के मत का अर्थक्षय करते हुए उन्हें इसी आड़ में दबाना-अनुशासित क़रना चाहते हैं, खुद उनसे किसी तरह अनुशासित होने को तैयार नहीं। पवित्रता की कोई ऐसी व्याख्या किसी भी हिन्दू के मन में संभव ही नहीं, जिसमें जीवन के शेष कर्म पवित्रता-अपवित्रता से निरपेक्ष यानी 'सेकुलर' हों और कोई एक या कुछेक कर्म ही पवित्र हों। इसी प्रकार गंगा-गोदावरी की चाहे जितनी महिमा गाई जाए, वह महिमा उस विश्व-दृष्टि का ही सहज अंग है, जिसके अनुसार ईश्वर या परम सत्ता कण-कण में सर्वत्र व्याप्त है। कोई भी परम्परानिष्ठ हिन्दू, वह साक्षर हो या निरक्षर, इस तथ्य से अपरिचित नहीं। अतः राजनैतिक कारणों अथवा अन्य विवशताओं से जब समाज का बहुलांश सदाचार के मार्ग पर न चल पा रहा हो, तब उसका कारण किसी परम्परागत हिन्दू मान्यता में खोजते फिरना भारत के शत्रुओं का साधन बनना भर है।

पवित्रता के प्रति भी भारतीय दृष्टि सुस्पष्ट है। नदियों और तीर्थों की पवित्रता सामाजिक पवित्रता का अंग है। उसके पीछे कोई भौतिक रहस्य नहीं है। जब तक हम नदियों और तीर्थों के प्रति पवित्रता की दृष्टि रखते हैं, वहां पूजा-उपासना, धर्म-चर्चा, यज्ञ-अनुष्ठान, विद्या-विवेचन, धर्म-विमर्श, सदाचार-निरूपण एवं व्यवस्था करते हैं, तभी तक वे तीर्थ हैं। यदि उन्हें सैरगाह, ऐशगाह, मदिरा-लय, जघन्य कर्म आदि के केन्द्र बनाते हैं, तो उसी क्षण से वे तीर्थ नहीं रह जाएँगे। उनकी पवित्रता विनष्ट। विभिन्न धर्मग्रंथों में यह स्पष्टतः विवेचित है कि विद्या एवं सदाचार को बढ़ाने वाले कार्य न होने पर तीर्थसार समाप्त हो जाता है और फिर ऐसी जगहें पवित्र नहीं रह जातीं। नदियों का प्रवाह तभी तक पवित्र है, जब तक उनके प्रति लोगों में श्रद्धा और पवित्रता के भाव तथा व्यवहार जीवंत हैं, वे उन्हें स्वच्छ रखते हैं, उनके तट पर संस्कृति और सभ्यता का ऐसा विचार-विमर्श

गंगा तभी तक पवित्र है, जब तक भारतीय समाज और राज्य पवित्रता को एक व्यावहारिक आदर्श मानता है, एक असंभव वस्तु नहीं। जिसके जीवन में पवित्रता की सतत इच्छा और प्रयास है और जिससे प्रमाद, भूल या वासना-ज्वर में कोई पाप हो गया है, उसे ही गंगा पवित्र करती है।

चलता है जो आदर्शों को लोक जीवन में गतिशील रखे, अन्याय के निवारण और न्याय की प्रतिष्ठा का प्रयास होता रहे। समाज के लिए जो अशुभ है, अन्यायकारक है, उसे विनष्ट करने की व्यवस्था के केन्द्र जब तक नदी-तटों में हों, ऐसी व्यवस्था करने में समर्थ वीर साधु नारी नर, पुण्यात्माएं जब तक इन नदियों में अपनी श्रद्धापूर्ण बुद्धि से प्रेरित हो नहाती हैं, अर्थात जब तक ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, ज्ञानयज्ञ और जपयज्ञ से ये नदियां पवित्र हैं, तभी तक वे समाज का कलुष और कल्मष, मल और दूषण भी धो पाने में समर्थ हैं।

जिन ऋषियों-मनीषियों ने पवित्रता एवं सदाचार का विस्तृत विवेचन किया है, उनके प्रति अनादर रखते हुए, उनकी बातों को गुजरे जमाने की पिछड़ी चीजें बताते हुए तथा उनके आदर्शों को त्याज्य अर्थों में धार्मिक और अपने आचरण को वरेण्य-अर्थ में धर्म-निरपेक्ष कहते हुए, फिर इन नदियों को पवित्र बताना-मानना मिथ्याचार है। गंगा तभी तक पवित्र है, जब तक भारतीय समाज और राज्य, पवित्रता को एक व्यावहारिक आदर्श मानता है, एक असंभव वस्तु नहीं। जिसके जीवन में पवित्रता की सतत इच्छा और प्रयास है और जिससे प्रमाद, भूल या वासना-ज्वर में कोई पाप हो गया है, उसे ही गंगा पवित्र करती है। जो गंगा के प्रति, गांगेय संस्कृति के प्रति मिथ्याचारी है, उसे गंगा दंडित कर सके, तभी वह शक्ति-प्रवाह है। गंगा की संस्कृति को नष्ट करने या करना चाहने वालों को गंगा पवित्र नहीं बनाती। उन्हें अशक्त बनाते जाने में ही गंगा की शक्ति है। जो गंगा के प्रति मातृ-भाव रखता है, वह यदि तट पर मल-मूत्र का विसर्जन भी करता है अन्य गलतियां भी करता है, तो गंगा उसे क्षमा कर सकती है, सद्बुद्धि देकर सन्मार्ग पर लगा सकती है। पर जो गंगा या अन्य नदियों के प्रवाह में जान-बूझकर औद्योगिक प्रदूषण, विषाक्त द्रव्य घोलता है या घोलने में सहायक बनता है वह गंगा का शत्रु है, गंगा-पुत्रों व गंगा-पुत्रियों का शत्रु है। ऐसा गंगाद्रोही यदि

गंगा के प्रति आदर प्रदर्शित करे, तो यह मिथ्याचार है। मिथ्याचार दंडनीय है। यहां गंगा पवित्र नदी की प्रतिनिधि है। यानी सभी नदियों के लिए यही तथ्य है।

किसी समाज की एक सम्पूर्ण एवं बहुआयामी धर्म-बुद्धि के कुछेक चुने हुए पक्षों को ही उसका संपूर्ण बताना उस समाज के शत्रुओं की स्वाभाविक रणनीति होती है। फलतः साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने भारतीय धर्मबुद्धि की ऐसी ही विवेचना शुरू की और अपने विद्याकेन्द्रों का यही लक्ष्य बनाया। पराजित और क्षयग्रस्त समाज में बुराइयां तो बीमारियों की तरह फैलती ही हैं। ऐसे में एकांगी विवेचनाओं को आधार मिल गया। फिर हर समूह अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के द्वारा ही दृश्य जगत को देखता है। अतः चर्च से ही परिचित औपनिवेशिक बुद्धि, लोगों को स्वभावतः लगा कि नदियों के प्रति भारतीयों की पवित्रता की भावना भी कुछ वैसी ही होगी—कि अपने पापों का 'कन्फेशन' कर लो, कर्मकांड करो और पवित्र।

जैसे-जैसे अंग्रेजी शिक्षा बढ़ी और वह एक विशेषाधिकार बनी, वैसे-वैसे उस विशेषाधिकार से सम्पन्न लोगों की यह राजनैतिक आवश्यकता बन गयी कि अधिकारविहीन कर दिये गये समाज, परम्परागत समाज को हीन कोटि का बताएं। उन्नीसवीं शताब्दी के अनेक तथाकथित समाज-सुधार आन्दोलनों में यही प्रवृत्ति प्रबल रही। वे ब्रिटेन से भारतीयों की पराजय में भारतीयों की शक्ति में आयी कमी को कारण नहीं मान पाते थे, अपितु उनकी भारतीयता को ही उसका कारण मानने लगे। यह ऐसा ही है, जैसे शरीर के रोगों का कारण खुद शरीर के ही होने को मान लिया जाये और शरीर को ही समाप्त कर देने की बात कही जाए। फलतः मध्यवर्ग में अपना स्वधर्म न निभा पाने के कारण जो विकृतियां आयीं, उन्हें पूरे भारतीय समाज की मुख्य कमजोरी मान लिया गया और भारतीयों की

परम्परा से जल-क्षेत्रों का स्वामित्व क्षेत्रीय जनों को प्राप्त था। केवटों-मल्लाहों को जल-क्षेत्रों पर विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे। गांवों को अपने-अपने क्षेत्र के जल-स्रोतों, सरित-सरोवरों पर सामान्य अधिकार थे ही।

जो शक्ति साम्राज्यवादी अंग्रेज लगातार छीन रहे थे, उसकी तरफ बहुत कम ध्यान दिया गया।

परम्परा से जल-क्षेत्रों का स्वामित्व क्षेत्रीय जनों को प्राप्त था। केवटों-मल्लाहों को जल-क्षेत्रों पर विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे। गांवों को अपने-अपने क्षेत्र के जल-स्रोतों, सरित-सरोवरों पर सामान्य अधिकार थे ही। वन्य जल स्रोतों पर वनवासियों को अधिकार प्राप्त था। वे सब ही इनके प्रति कर्तव्य के लिए भी जिम्मेदार थे। यह सब अधिकार राज्य ने ले लिये। समाज धार्मिक उत्सवों के जरिए इन जल-स्रोतों के प्रति अपना ममत्व मात्र दिखा पाता था। अधिकारों से वह वंचित किया जा चुका था। इस मूल हेतु को न समझने वाले औपनिवेशिक सुधारवादियों ने उस ममता की ही खिल्ली उड़ाने में अपने को तृप्त किया। यह ऐसा ही है, जैसे लोगों के साधन-स्रोत छीनकर पहले तुम्हें झुग्गी-झोंपड़ी में रहने को मजबूर कर दिया जाए और फिर वही उनका स्वभाव बताया जाए और उसे छोड़ने का उन्हें उपदेश पिलाने का संगठित धंधा चलाया जाए।

अधिकार न होने पर भी लोग अपने जल-स्रोतों को स्वच्छ रखने का कर्तव्य यथाशक्ति निभा रहे हैं। आज भी पवित्र गोदावरी तथा दक्षिण की अन्य पवित्र नदियों के तटवासी जब कोई 'मानता' (अभिलाषा) मानते हैं, और वह गोदावरी या अन्य पवित्र नदी मैया की कृपा से पूरी हो जाती है, तो वे अपने पास के घाट की पूरी सफाई का उस अवधि का जिम्मा ले लेते हैं। समस्त सीढ़ियां धोई जाती हैं, गोबर से लीपी जाती हैं, उनमें अल्पना रची जाती है और फिर दीप सजाये-जलाये जाते हैं।

नदी-तटवासियों में अपनी नदियों के प्रति श्रद्धा आज भी भरपूर है। लेकिन

अधिकार न होने पर भी लोग अपने जल-स्रोतों को स्वच्छ रखने का कर्तव्य यथाशक्ति निभा रहे हैं। आज भी पवित्र गोदावरी तथा दक्षिण की अन्य पवित्र नदियों के तटवासी जब कोई 'मानता' (अभिलाषा) मानते हैं, और वह गोदावरी या अन्य पवित्र नदी मैया की कृपा से पूरी हो जाती है, तो वे अपने पास के घाट की पूरी सफाई का उस अवधि का जिम्मा ले लेते हैं।

एक तो देश के समस्त साधन—स्रोतों के स्वामित्व का केन्द्रीकरण हो गया है, दूसरे, भारत की अपनी विद्याधाराएं भी सूख गयी हैं। ऐसी परिस्थिति में सचमुच करना क्या है, यह बहुत सूझता नहीं। इस पर संगठित विचार-विमर्श भी नहीं होता। कोई व्यक्ति जब अपनी निजी सूझ से पहल कर बैठता है, तो व्यापक जन-सहयोग सुलभ हो जाता है। नर्मदा-जयंती का होशंगाबाद में विगत 5-6 वर्षों से हो रहा विराट आयोजन इसका साक्ष्य है। गंगा-दशहरा तो गंगा-तट पर सर्वत्र मनाया ही जाता है। यमुना-जयंती का भी वार्षिक आयोजन गोस्वामी तुलसीदास के जन्मस्थान राजापुर से प्रारम्भ हो गया है। विद्या-केन्द्रों के अभाव में इन प्रयासों का संगठित विचार एवं योजना निरूपण नहीं हो पाता। पर शायद ऐसे ही प्रयासों से स्वदेशी विद्या-केन्द्र भी पुनः उभरें—बनें।

हर नदी में घाटों की सफाई का स्वैच्छिक कार्य परम्परा से होता रहा है। लोगों के अधिकार छिन जाने के बाद से इन कामों में शिथिलता और बिखराव आया है। पर पूरी तरह ये समाप्त नहीं हैं। इन्हीं कार्यों को सरकारी-अर्द्ध-सरकारी शैक्षणिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों—राष्ट्रीय सेवा योजना इत्यादि का नाम दे दिया जाने लगा है। ये नाम और काम बाजे-गाजे के साथ प्रचार-बखान करते हुए होते हैं। इनमें समाज की सड़न दूर करने का मुक्तिदूत वाला भाव प्रबल होता है। परम्परा से ऐसे काम स्वधर्म-बुद्धि से कर्तव्य समझ कर होते रहे हैं। किसी भी इलाके में अभी भी नदी-तट को गंदी करने वाली कोई आबादी नहीं है। आबादी के कुछेक लोग ऐसा करते हैं। ये लोग पहले स्थानीय प्रतिष्ठित जनों का नैतिक अनुशासन मानते थे, तो गंदगी का साहस नहीं कर पाते थे। अब स्थानीय प्रतिष्ठित जन शक्तिविहीन हैं, मात्र अनैतिक कार्य करने वाले ही अब राज्यतंत्र की छत्रछाया में प्रतिष्ठित होते हैं। सो, न तो वे नैतिक इच्छा रखते है, न बल।

हर नदी में घाटों की सफाई का स्वैच्छिक कार्य परंपरा से होता रहा है। लोगों के अधिकार छिन जाने के बाद से इन कामों में शिथिलता और बिखराव आया है। पर पूरी तरह से समाप्त नहीं है।

प्रदूषणकर्त्ता ही उपदेशक बने

गंगा और अन्य सभी नदियां आज प्रदूषित हो रही हैं, यह सत्य है। इस प्रदूषण का यथार्थ स्वरूप भी सभी जानते हैं। दुर्भाग्यवश, शासक समूह यह जानते हुए भी आश्चर्यजनक दुस्साहस से नदियों की स्वच्छता के भाषणों से जनता पर अस्वस्थकर तनाव-दबाव डालते रहते हैं। इससे एक अत्यन्त विकृत जुगुप्सित वातावरण बनता है, जिसमें नेताओं—अफसरों के इर्द-गिर्द ऐसे लोगों का जाल छाने लगता है जो या तो क्षुद्र चाटुकारिता के लिए या फिर अपनी कातर विपन्नता से उपजी निरीहता में किसी छोटी-सी मदद के लिए नेताओं-अफसरों के इन दुस्साहसी भाषणों-बकवासों की प्रशंसा करते रहते हैं। मन से वे भी जानते हैं कि नदियां प्रदूषित तो इन्हीं के कारण हो रही हैं।

ऐसी स्थिति समाज के एक अंश को लगातार खोखला बनाती जाती है। ऐसा राष्ट्र जिसके अधिकांश शासक नेता, अफसर, निरर्थक बातें बोलने, धोखाधड़ीवाले नारे उछालने या विज्ञापन प्रचारित-प्रसारित करवाने तथा निरन्तर अपने सामाजिक-सांस्कृतिक अपराधों को छिपाने की चिन्ता में तिकड़में रचने हेतु राष्ट्रीय समय, साधन-स्रोत और शक्ति को फूंकने में लग जाएं, वह अरक्षित और क्षीण होने लगता है। इसलिए भी भारतीय समाज का कर्तव्य है कि वह इन शक्तिशाली लोगों को आश्वासन दे; यानी भारतीय राज्य को भारतीय राष्ट्र अभय दे और अब तक की गयी गलतियों के लिए न्यूनतम दंड और प्रायश्चित का आश्वासन देकर उन्हें राष्ट्रीय समय, साधन-स्रोत और शक्ति का जारी अपव्यय बन्द करने को कहे तथा इनके सदुपयोग सुझाए।

गंगा और अन्य सभी नदियां आज प्रदूषित हो रही हैं, यह सत्य है। इस प्रदूषण का यथार्थ स्वरूप भी सभी जानते हैं। दुर्भाग्यवश, शासक समूह यह जानते हुए भी आश्चर्यजनक दुस्साहस से नदियों की स्वच्छता के भाषणों से जनता पर अस्वस्थकर तनाव-दबाव डालते रहते हैं।

राज्य का अपराध

गंगा को ही लें, वीरभद्र में आई० डी० पी० एल० की रासायनिक जहरीली गंदगी, हरिद्वार शहर और 'भेल' का मलबा, फिर नरौरा, कानपुर जगह-जगह का शहरी कचरा, मल-मूत्र, तरह-तरह के रासायनिक कारखाने, कृत्रिम खाद के कारखाने, कृत्रिम वस्त्रों के कारखाने, रंगाई-छपाई की आधुनिक फैक्टरियां, तथा-कथित कीटाणु नाशक कारखाने आदि के तीखे-विषाक्त अम्ल, क्षार एवं अन्य अपशेष जोकि सरकारी व्यवस्था अथवा स्वीकृति से ही चलने वाले उपक्रमों के अपशेष हैं, इस पवित्र नदी में एक बदबूदार जहरीली, जुगुप्सित अंतर्धारा लगातार चौड़ी करते जाने के अपराधी हैं।

यमुना का भी हाल यही है। आधुनिक राज्य की राजधानी, यमुना को क्या से क्या बना देती है, इस लज्जास्पद तथ्य को छिपाने का दुस्साहस विस्मयप्रद है। दिल्ली, कानपुर, पटना, कलकत्ता और वृंदावन जैसे शहरों में गंदगी की प्रचंडता का गहरा सांस्कृतिक अध्ययन-मनन आवश्यक है। यह गंदगी मात्र नदियों के प्रति दृष्टि का फल नहीं है, अपितु एक विशेष जीवन-दृष्टि के उभार का परिणाम है। यह उभार उस विद्या-दृष्टि का उत्पादन है, जो ब्रिटिश काल की विरासत विदेशी बुद्धि तंत्र को ही भारत की उपयोगी विद्या मानती है। उस विद्या की भी पूरी नहीं, छिछली जानकारी से भी ये मगन रहते हैं।

सचाई तो यह है कि नदियों के बारे में आज के भारतीय शासक वर्ग और शक्तिशाली वर्ग की कोई स्पष्ट या सामान्य दृष्टि है ही नहीं। नदी की गंदगी सर्वत्र शहर-कस्बों की गंदगी का फल है। शहरों की यह गंदगी अनिवार्य नहीं है। यह

आधुनिक विद्या-केन्द्रों के पास कोई भी व्यवस्थित विचार तक नहीं है, जिसके अनुसार भारतीय शहरों में गंदगी के उत्पादन को घटाने और उत्पादित गंदगी के व्यवस्थित और बेहतर उपयोग का कोई राष्ट्रीय कार्यक्रम हो।

बिना दूर तक सोचे-विचारे आपाधापी में शहर बसाते-बढ़ाते जाने का नतीजा है। आधुनिक विद्या-केन्द्रों के पास कोई भी व्यवस्थित विचार तक नहीं है, जिसके अनुसार भारतीय शहरों में गंदगी के उत्पादन को घटाने और उत्पादित गंदगी के व्यवस्थित और बेहतर उपयोग का कोई राष्ट्रीय कार्यक्रम हो। फिर, जो छिटपुट विचार हैं भी, उन पर समाज में बहस चलाने की कोई कोशिश नहीं है। माना जाता है कि गंदगी के बारे में विशेषज्ञों के ये विचार पवित्र निगूढ़ विचार हैं। सर्व-साधारण को इनका पता चला कि वे इन्हें प्रदूषित कर देंगे! इन विचारों को तो बस कानून बनाकर अचानक लागू कर देना है। लोगों का कर्तव्य इन पवित्र निगूढ़ विचारों के अमल की योजना में 'पार्टीसिपेट' करना है। इनके आधारों पर सवाल उठाने, बहस करने, विविध निष्कर्षों और परिकल्पनाओं के द्वारा उनके पहलुओं को जानने और इस प्रक्रिया में सही निर्णय पर पहुंचने का इन लोगों का अधिकार नहीं माना जाता।

ऐसे में किसी भी तरह की समाज-भावना का जीवित रह पाना असंभव है। हमारे पास प्रदूषण को रोकने के एक-से-एक कानून हैं, नियंत्रण एक्ट हैं, बोर्ड हैं, प्लानिंग हैं, प्रोग्राम हैं, पर ये सब मुट्ठी भर लोगों की शक्ति बढ़ाने या दिखाने तथा व्यापक समाज में असहायता और परायायन फैलाने के ही उपकरण बनकर रह जाते हैं। सरकारें लोगों को जागरूक होने वगैरह का उपदेश देती हैं जबकि असलियत यह है कि जागरूकता की पहली पहचान होगी खुद सरकार के स्वरूप के प्रति सजगता। आखिर क्यों, कानून बनाने में मुस्तैद ये सरकारें, उनके पालन में असमर्थ रहती हैं। खुद कानून बनाने की प्रक्रिया का समाज से ऐसा कौन-सा रिश्ता है कि समाज उसके प्रति अपनत्व और आत्माभिमान नहीं रखता, उसके पालन को स्वधर्म नहीं मानता?

समाज में जागरूकता का अर्थ है उसमें अपनी विविध इकाइयों के प्रति जाग-

सरकारें लोगों को जागरूक होने वगैरह का
उपदेश देती हैं जबकि असलियत यह है कि जागरूकता
की पहली पहचान होगी खुद सरकार के
स्वरूप के प्रति सजगता।

रूकता। विकास की रूपरेखा तय करने वाली इकाई, कानून बनाने वाली इकाई, उद्योगों के लिए समाज के साधन-स्रोत सुलभ कराने वाली, रियायतें और सहायता देने वाली इकाई, उन पर अंकुश रखने के लिए बनी, पर अंकुश रखने में असमर्थ इकाई और ये सारी इकाइयां जिस समाज के हित की दावेदार हैं, उसकी अन्य सांस्कृतिक-धार्मिक-सामाजिक इकाइयां—इनका परस्पर क्या रिश्ता है? क्या वह रिश्ता स्वस्थ और स्वच्छ है? या वह रिश्ता ही प्रदूषित और मलयुक्त, सड़ा और दुर्गंधित है? इन मुद्दों पर जागरूकता के बिना नदियों के प्रति जागरूकता की बातें अपने आपको और दूसरों को धोखा देने का स्वांग भर होंगी।

थोड़ा पीछे लौटें। विजयनगर साम्राज्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना से कुछ सीमा तक निर्देशित अंतिम बड़ा राज्य था। इसके बाद से, भारतीय राज्य-तंत्र का भारतीय संस्कृति से रिश्ता छितराने-बिखराने लगा। इसके बीज स्वयं विजयनगर के भी राज्यतंत्र में विद्यमान थे। सोलहवीं शताब्दी ईस्वी के बाद से भारतीय समाज और भारतीय शासक वर्ग में अंतराल बढ़ता गया। किंतु भारतीय विद्या की क्षीण धारा किसी तरह गतिशील रही। ईस्वी सन् की अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में आक्रामक अंग्रेजों ने भारतीय विद्याधारा के समूल विध्वंस की योजना रची। तब से भारत में वे ही लोग शक्तिशाली रहने दिये गये, जिन्होंने अपनी सांस्कृतिक बुद्धि का अंग्रेजी योजनानुसार रूपांतरण कर लिया और समाज से परायापन पाल लिया।

नदियों तथा अन्य जल-स्रोतों से सिंचाई का काम भारत में कम-से-कम चार हजार से अधिक वर्षों से होता रहा है। पर यह सिंचाई-व्यवस्था समाज-नियंत्रित थी। नदियों-तालाबों के रख-रखाव की भी जिम्मेदारी इसीलिए समाज की थी, क्योंकि इन साधन-स्रोतों पर अधिकार उसी का था।

रूपांतरित नया वर्ग

नये शक्तिशाली वर्ग की भारत के प्रति, भारत की नदियों के प्रति दृष्टि रूपांतरित हो गयी। नदियो तथा अन्य जल-स्रोतों से सिंचाई का काम भारत में कम-से-कम चार हजार से अधिक वर्षों से होता रहा है। पर यह सिंचाई-व्यवस्था समाज-नियंत्रित थी। नदियों-तालाबों के रख-रखाव की भी जिम्मेदारी इसीलिए समाज की थी, क्योंकि इन साधन-स्रोतों पर अधिकार उसी का था। उन्नीसवीं शती से यह अधिकार पूरी तरह राज्य के अधीन है। फलतः गहरी कर्तव्य भावना के बाद भी भारतीय समाज नदियों-तालाबों के प्रति अपने कर्तव्य पूरा कर पाने में सर्वथा अक्षम है। अब शासक-वर्ग का नया संदेश यह है कि अधिकार सब हमारे हैं, पर तुम कर्तव्य अवश्य करो। उसके एवज में हम अपनी योजनानुसार तुम्हें कुछ साधन-स्रोत सौंपते रहेंगे। यह परम्परागत भारतीय राज्यबुद्धि से नितांत विपरीत बुद्धि है। धर्मशास्त्रों में देश भर की सभी नदियों एवं जल-स्रोतों के प्रति पवित्रता की दृष्टि परम्परागत राजनैतिक बुद्धि का अंश है। इसीलिए धर्मशास्त्रों में इन नदियों-जल-स्रोतों के प्रति अधिकार एवं कर्तव्य, दोनों ही समाज के, और सभी लोगों के, माने गए हैं, मात्र राज्यकर्ताओं के नहीं।

मौजूदा शक्तिशाली वर्ग की नदियों के प्रति दृष्टि और भाषा समाज से भिन्न है। नदियों के नाम तक बिगाड़कर बोले जाते हैं। गंगाजी इनके लिए 'द गेन्जेस' है, मां गोदावरी 'गोडॉरी' है, देवी तमसा 'टोन्स' है! दूसरे, इसके लिए नदियां उत्पादन के साधन भर हैं। वह भी शायद अपना साधन नहीं। क्योंकि अपने साधनों को आदमी पुश्त-दर-पुश्त सम्हाल कर रखना चाहता है। ये इन उत्पादन-साधनों का अधिकतम व्यय यथाशीघ्र करना चाहते हैं। ऐसा व्यय और कुछ खास तरह के उत्पादन-रूपों की व्यापक एकरूपता ही इनकी दृष्टि में एकमात्र विकास

रूप है। इस क्रम में साधनों में जो विकार आएं, उन पर थोड़ा ध्यान तो दिये रहना है, पर इस विकार के जिम्मेदार ये नहीं हैं। इस मामले में 'अपनी' आगामी पीढ़ी के प्रति इनके भीतर रहस्यमय श्रद्धा है कि वह समाधान ढूंढ लेगी। लेकिन साधनों के व्यय ये अभी कर डालेंगे।

इस दृष्टि से परिणाम भयंकर हैं। गंगा, यमुना, व्यास, सतलुज, शोण, नर्मदा और कृष्णा आदि नदियों पर बने, बन रहे और बनने वाले बांधों से जो जमीन डूब रही है, उसकी कृषि-उपज क्षमता, वन-सम्पदा, वनोपज-क्षमता का कोई भी हिसाब नहीं लगाया जाता, न रखा जाता। गंगा पर टिहरी बांध से 70 हजार, सतलुज पर भाखड़ा बांध से 36 हजार, रिहंद पर रिहंद बांध से 52 हजार, नर्मदा सागर और सरदार सरोवर नामक नर्मदा-बांधों से एक लाख 32 हजार, व्यास पर पोंग बांध से 20 हजार, कोयना पर कोयना बांध से 20 हजार, महानदी पर हीराकुड बांध से 72 हजार, तुंगभद्रा पर नागार्जुन सागर से 19 हजार, कृष्णा पर श्रीशैलम् बांध से एक लाख, पेरियार पर इदुकी बांध से 20 हजार, चेरुतोनी पर चेरुतोनी बांध से 30 हजार, ताप्ती पर उकाई बांध योजना से 50 हजार, इस तरह कुल मिलाकर 6 लाख 21 हजार लोग इस नदी-दृष्टि से विस्थापित हुए हैं। इसी तरह 1500 अन्य बड़े बांधों से विस्थापित होने वाले कम-से-कम 1 करोड़ 50 लाख और होंगे। जो उपजाऊ भूमि व वन-सम्पदा डूबी है, वह बेहिसाब ही है। इन बांधों से मिलने वाली बिजली, सिंचाई और आजीविका का लाभ भी लगभग डेढ़ करोड़ लोगों को ही मिलेगा।

इस तरह यह सब साधन-स्रोतों का कुछ खास लोगों के पक्ष में और कुछ खास लोगों के विरोध में पुनर्वितरण का एक सिलसिला बन जाता है। ताप बिजलीघरों से होने वाले प्रदूषण, बड़े बांधों से फैलने वाले दलदली क्षेत्र तथा खार की समस्या, नयी-नयी बीमारियों का फैलाव, मलेरिया, फाइलेरिया और मस्तिष्क ज्वर का

राष्ट्रीय प्राकृतिक जल की कमी एक सुविदित तथ्य है। फिर भी शहरों में शौच की ऐसी व्यवस्था जारी है, जो इस जल का भीषणतम दुरुपयोग करती है।

विस्तार, वनों का विनाश, वनस्पतियों और प्राणियों का विनाश, बांधों में पानी रुकने से नदियों में आने वाली निर्जीविता, बांधों के टूटने से होने वाला जलप्रलय, उनके कारण भूकम्पों से होने वाला जल-नाश एवं प्राणि-नाश—इनका तो हिसाब करना तक कुफ समझा जाता है, जबकि लाभों में मामूली से मामूली चीज तक गिनाई जाती है। प्रदूषण से भी बड़ी समस्या लोगों के प्राकृतिक पर्यावरण, परिदृश्य और परिवेश के बलात् रूपांतरण की है। यह रूपांतरण मुट्ठी भर लोगों की इच्छानुसार और समाज को बहुत कुछ अंधेरे में रखकर किया जाता है। बाद में, अपने लहलहाते खेतों, खलिहानों, बस्तियों, जल-स्रोतों, वनों, पेड़-पौधों, चरागाहों, पूजास्थलों, श्रद्धा-केंद्रों में दूसरे लोगों के कार्य-केंद्र और आवास-केंद्र बने देखकर किसानों-श्रमिकों-शिल्पियों का जी इसीलिए और ज्यादा कचोटता है कि यह सब उनसे पूछकर, सामाजिक पंचायतों के माध्यम से नहीं होता। बड़े बांधों-बिजलीघरों से उजड़े छोटे किसान—देशी शिल्पी, खेतिहर मजदूर जब शहरों में फुटपाथों, झुग्गी-झोंपड़ियों में घिसटते-तड़पते जीने को विवश होते हैं और एक पुश्त पहले तक अपने ही जैसी जिन्दगी जीने वाले कुछ लोगों को इस कीमत पर उपभोग करते देखते हैं, तो साधन-स्रोतों के इस पुनर्वितरण में न तो उन्हें राष्ट्रीय दृष्टि दिखती है, न सामाजिक न्याय ही। नदियों और जल-स्रोतों का रूपांतरण उससे जुड़े सब लोगों की राय, बहस, स्वीकृति और सलाह से हो, तब अलग बात हो।

यह एक बुद्धि-छल है कि आज विकास के नाम पर होने वाले विनाश के विरोध को राष्ट्रीय गतिशीलता के विरुद्ध बताया जाये। विकास का स्वरूप क्या हो, विकास के लिए जो कीमत अपरिहार्य हो, उसमें कौन कितना अंश दे, यह निर्णय राष्ट्रीय न्याय-बुद्धि से निश्चित होना चाहिए।

आज की स्थिति में तो न्याय और विवेक का सर्वथा अभाव बना रखा गया है। राष्ट्रीय प्राकृतिक जल की कमी एक सुविदित तथ्य है। फिर भी शहरों में शौच

मूलतः मौजूदा सिंचाई-नीति और जल-नीति, जो मौजूदा विकास-नीति का अंग है—सांप्रदायिक है।

की ऐसी व्यवस्था जारी है, जो इस जल का भीषणतम दुरुपयोग करती है। ऊपर से इस व्यवस्था के कारण शहरों में भूमितल से कुछ ही नीचे मल-मूत्र भरी विशाल गंदी झीलें अंतःप्रवाहित हैं। यह गंदगी भी नदियों को बरबाद करती है।

अधुनिक क़िस्म की सिंचाई की विचित्र आपाधापी का उन्माद अब रंग ला रहा है। परंपरागत सिंचाई भारत में बहुत काल से व्यापक है। पर वह विवेक-पूर्वक थी। तथाकथित आधुनिक सिंचाई ने तथाकथित हरितक्रांति के गौरव-क्षेत्रों पंजाब-हरियाणा में आजादी के बाद सन् 1985 तक भूमिगत जल-स्तर 15-20 मीटर नीचे धकेल दिया। अब वहां आधे से अधिक पंजाब में ट्यूबवेल लगाना निषिद्ध घोषित कर दिया गया है। हरियाणा भी उसी दिशा में बढ़ रहा है। उत्पादन-क्षमता तो स्थिर होकर नीचे झुकने ही लगी है। खुद सरकारी आंकड़ों का यह कहना है। लगभग सात लाख हेक्टेयर जमीन पंजाब में इसी सिंचाई-तंत्र के कारण ऊसर हो गयी है, जोकि कुल कृषि भूमि का छठा अंश है। हरियाणा में भी उम्दा कृषि भूमि ऊसर हो चली है। यह गलत सिंचाई-विधियों और हाय-हाय करते हुए भूमिगत सारा पानी तेजी से हड़पने के परिणाम हैं।

मूलतः मौजूदा सिंचाई-नीति और जल-नीति, जो मौजूदा विकास-नीति का अंग है—सांप्रदायिक है। हमारे यहां समाज की स्वाभाविक वैचारिक इकाई संप्रदाय माना गया है। जब ऐसी नीति बनती है, जो सभी वैचारिक समूहों का ध्यान रखे तब वह सामाजिक नीति है। जब किसी एक या कुछेक वैचारिक समूहों के हित प्रमुख और शेष के हित गौण रखे जाएं, तो वह सांप्रदायिक नीति है। भारतीय दृष्टि से यही आधारभूत सांप्रदायिकता है। हिंदू-मुसलमान या हिंदू-ईसाई जैसे विभाजनों भर को सांप्रदायिक कहना बुद्धिभ्रम है।

गतिहीन व्यापक समाज

नदियों एवं जल-स्रोतों के बारे में मौजूदा नीति सांप्रदायिक है, क्योंकि वह एक खास वैचारिक समूह को ही राष्ट्र भर की नदियों और जल-स्रोतों के बारे में विचार-विमर्श एवं निर्णय तथा नियोजन का अधिकार देती है। फलतः व्यापक राष्ट्रीय समाज इस स्तर पर गतिहीन बना दिया गया है। खुद नदियां इसका प्रबल साक्ष्य हैं। उदाहरण के लिए प्रतिनिधि-प्रतीक गंगा नदी को ही लें। कानपुर से बनारस तक जगह-जगह गंगा में दो तरह के प्रदूषण दिखते हैं। एक तो लाशें हैं, जो जगह-जगह ठहरी हुई हैं। ये व्यापक भारतीय समाज के भीतर की लाशें हैं। उस समाज को लकड़ियों से वंचित कर दिया गया है। साथ ही उसकी गंगा का प्रवाह भी बाधित कर दिया गया है। यह सब इस व्यापक भारतीय समाज की बुद्धि से नहीं हुआ है। अपितु उस बुद्धि को गतिहीन रहने के लिए विवश करके यह स्थिति लायी गयी है। ठहरी हुई-अटकी हुई लाशें व्यापक राष्ट्रीय बुद्धि के ठहराव का साक्ष्य हैं। प्रदूषण का दूसरा रूप है—शहरी मल-मूत्र, रासायनिक-औद्योगिक अपशेष की फैलती भीतरी धारा का और गंगाजल में उसके विषाक्त मिश्रण का। ये मल-मूत्र, ये औद्योगिक अपशेष निरंतर तीव्र गति से जगह-जगह गंगा में गिरते हैं। ये सांप्रदायिक गतिशीलता का फल है। यह गतिशीलता व्यापक समाज से बिना पूछे, बिना राय के हो रही है। इसीलिए यह सांप्रदायिक है। समाज की बुद्धि लगने दी जाय तो दोनों प्रदूषण साथ-साथ समाप्त हों। सांप्रदायिक गतिशीलता और राष्ट्रीय ठहराव में सीधा आंतरिक रिश्ता है।

बांध-योजनाओं और ताप बिजली योजनाओं के माध्यम से साधन-स्रोतरहित किये गये लोगों को आर्थिक मुआवजे तो कम दिये ही जाते हैं, ये मुआवजे बाहरी एजेंसी द्वारा दिये जाने से भ्रष्टाचार और मनमानी भी भरपूर होती है। यदि

राष्ट्रीय विकास यदि सचमुच राष्ट्रीय दृष्टि से हो, तो वह विवेकपूर्ण होगा। अभी विकास के नाम पर जो हो रहा है, वह तो बदहवास लूट है। कुछ लोग जाने किस हड़बड़ी में राष्ट्र को लूटना, बरबाद करना, बिगाड़ना, क्षत-विक्षत कर देना चाहते हैं।

ग्राम-समूहों की संपूर्ण प्रतिनिधित्व वाली संस्थाओं के जरिए परंपरागत ढंग से ये सब काम होते तो इनकी शक्ल ही भिन्न होती। अभी तो जो अफसरों से मिल सके, सौदेबाजी कर सके, सिर्फ वही कुछ उल्लेखनीय पा सकता है। न्याय की मांग करने वालों को मारने-मरवाने, पीटने-पिटवाने, थाना-कचहरी में फंसाने, सामान लुटवाने, उजाड़ देने, मुआवजा अत्यल्प देने या उनके अधिकार को गैर-कानूनी करार देने की घटनाएं व्यापक हैं।

उद्योगों को बाहरी हस्तक्षेप की तरह बलात् सामाजिक रूपांतरणों के माध्यम के तौर पर फैलाने की नीति के कारण ये उद्योग जिन क्षेत्रों में कुछ लोगों द्वारा लगाये जाते हैं, उस क्षेत्र की नदियों को रोगाणुमय, विषाणुमय और मारक बना डालते हैं। पानी का एक पुराना नाम 'जीवन' है। अब इस मनमाने औद्योगीकरण के कारण कहीं-कहीं उसका नया नाम 'मृत्यु' रखने की विवशता पैदा हो गयी है। उस क्षेत्र के बाकी लोगों के प्रति ये कथित उद्योगकर्मी कतई जवाबदेह नहीं होते। उनकी जिम्मेदारी तो सीधे उस आधुनिक सरकार के प्रति है, जो अपनी जिम्मेदारी के बोझों से सदा धंसी रहती है। फलतः कश्मीर से कन्याकुमारी और अमृतसर से जगन्नाथ धाम तथा पश्चिम बंगाल की धुर पूर्वी सीमा तक सभी जगह लगभग प्रत्येक प्रमुख नदी और छोटी नदी भी एग्रो केमिकल्स, पेपर मिल्स, रेयान्स, अन्य वस्त्रोद्योग, रंगाई-छपाई के उद्योग तथा विभिन्न उद्योगों, रासायनिक निर्माणों के औद्योगिक कचरे एवं अपशेष से विषाक्त होती जा रही है।

यह कहना कि यह सब विकास के लिए अपरिहार्य है, असत्य है। राष्ट्रीय विकास यदि सचमुच राष्ट्रीय दृष्टि से हो, तो वह विवेकपूर्ण होगा। अभी विकास के नाम पर जो हो रहा है, वह तो बदहवास लूट है। लगता है, कुछ लोग जाने किस हड़बड़ी में राष्ट्र को लूटना, बरबाद करना, बिगाड़ना, और जल्दी-से-जल्दी ये सब काम निपटाना, क्षत-विक्षत कर देना चाहते हैं। एक विचित्र भय, लिप्सा

आज नहीं तो कल, इस सब पर सवाल और तीखे उभरेंगे। तब ये लोग क्या करेंगे ? क्या जागृत राष्ट्र के विरुद्ध ये विकास करने वाले लोग युद्ध घोषित कर देंगे ? या भाग जायेंगे ? कहां जायेंगे भागकर अपने देश से ? यह उनका भी देश है। उन्हें यहीं रहना है। अतः बेहतर तो यही है कि नदियों और जलाशयों, पर्यावरण और परिवेश के प्रति वे भी पवित्रता, श्रद्धा और विनय का भाव अपना लें। देश के साथ घुलें-मिलें। जो कुछ करना है, सबकी राय से करना है।

और उन्माद है उनमें। आखिर उन्हें भी तो यहीं रहना है—पुश्त-दर-पुश्त। आज नहीं तो कल, इस सब पर सवाल और तीखे उभरेंगे। तब ये लोग क्या करेंगे ? क्या जागृत राष्ट्र के विरुद्ध ये विकास करने वाले लोग युद्ध घोषित कर देंगे ? या भाग जायेंगे ? कहां जायेंगे भाग कर अपने देश से ? यह उनका भी देश है। उन्हें यहीं रहना है। अतः बेहतर तो यही है कि नदियों और जलाशयों, पर्यावरण और परिवेश के प्रति वे भी पवित्रता, श्रद्धा और विनय का भाव अपना लें। देश के साथ घुलें-मिलें। जो कुछ करना है, सबकी राय से करना है। बुद्धि सबके है—प्रधानमंत्री के भी, सचिव के भी, गांव पंचायत और वनवासियों के मुखियों के भी और साधारण नारी-नर, किसान-मजदूर के भी। सभी की बुद्धि से नदियों के प्रति नीति बने, क्योंकि सभी की श्रद्धा से वे हजारों साल से प्रवहमान हैं। रूपांतरण भी सबकी इच्छा और योजना से ही होने पर राष्ट्रीय कहलाता है। अराष्ट्रीय रूपांतरण का स्थान राष्ट्रीय रूपांतरण को लेना चाहिए।

तो क्या हम अपनी नदी-दृष्टि को और जिस विश्व-दृष्टि का यह नदी-दृष्टि अंग है, उस विश्व-दृष्टि को पुनः प्रतिष्ठित कर पाएंगे ? क्या पवित्रता हमारे जीवन का नियामक तत्व फिर बनेगी ? या हमारे शक्तिशाली लोग धरती माता, नदी माता और वनदेवी को, खेती, जल और वनोपजों को इसी तरह कुछ लोगों के हक में और बाकी लोगों के विरोध में बलात् रूपांतरित किये रहेंगे ? क्या हम सांस्कृतिक-बौद्धिक स्तर पर फिर से एक राष्ट्र बनने की पहल नहीं कर पाएंगे ?

□□